International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(2): 50-53

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(2): 50-53
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 25-01-2014
Accepted: 10-02-2015

डॉ. माधवी शर्मा
(प्राचार्य), डी. बी. (पी. जी.)
महाविद्यालय, खेरली (अलवर)

Correspondence
डॉ. माधवी शर्मा
(प्राचार्य), डी. बी. (पी. जी.)
महाविद्यालय, खेरली (अलवर)

वेदों में स्त्रीवाद

डॉ. माधवी शर्मा

समाज की रचना स्त्री और पुरूष दोनों के समन्वय से हुई है। पुरूष और स्त्री समाज रूपी रथ के दो पहिये हैं। स्त्री और पुरूष इन दोनों में एक के भी अभाव में समाज विकृत हो जाएगा। पुरूष के लिये स्त्री की आवश्यकता है और स्त्री के लिए पुरूष की आवश्यकता है। इस प्रकार दोनों ही परस्पर सम्बद्ध है।

जिस प्रकार प्रकृति के बिना पुरुष का कार्य अपूर्ण रहता है, उसी प्रकार स्त्री के बिना मनुष्य का जीवन अपूर्ण ही रहता है। वैदिक काल में सामाजिक व्यवस्था स्त्री व पुरुष सम्बन्ध के तथ्य के आधार पर ही की गयी थी। मानव जीवन रूपी गाड़ी के दो चाक हैं। एक स्त्री व दूसरा पुरुष। दोनों चाक बराबर रहने चाहिए। दोनों चाकों का साथ–साथ चलना भी जरूरी है। वैदिक साहित्य में स्त्री को पुरुष की अर्धांगिनी कहा है शतपथ ब्राह्मण में कहा है कि जो पत्नी है वह अपनी आत्मा का आधा भाग है जब तक कोई व्यक्ति पत्नी को प्राप्त नहीं करता, तब तक उसे सन्तान की प्राप्ति नहीं होती है और वह अधूरा ही माना जाता है। जब वह पत्नी को प्राप्त करता है तब उसे सन्तान प्राप्त होती है और वह पूर्ण हो जाता है।

स्त्री को पुरुष की अर्धांगिनी कहना पुरुष की अधिक शारीरिक शक्ति के कारण स्त्री के ऊपर आधिपत्य का खात्मा है। जब स्त्री पुरुष का आधा अंग है तो अधिकर्ता व अधिकृत का भाव ही शेष नहीं रह जाता है। स्त्री व पुरुष दोनों का अधिकार बराबर है। परिवार, समाज, व राष्ट्र के सुख, समृद्धि व विकास के लिए वैदिक साहित्य में स्त्री का आलोचनात्मक अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि स्त्री के सम्मान के आधार पर उसके तीन पद निर्धारित किए गये थे – गृहिणीपद, मातृपद व सहचरीपद।

गृहिणीपद– परिवार के सदस्य के द्वारा घर में रहकर – जो कुछ भी किया जाता है वह सब परिवार के आन्तरिक जीवन में समाविष्ट हो जाता है। स्त्री व पुरुष के विवाह बंधन में बंधकर एक साथ रहने से ही पारिवारिक जीवन का प्रारम्भ होता है। परिवार में संतति की वृद्धि से परिवार का विकास होता है। यह पारिवारिक जीवन पूर्णरूपेण स्त्री से ही सम्बन्धित है। वैदिक काल में गृहिणीपद अत्यन्त ही महत्वपूर्ण था, क्योंकि उस समय का सामाजिक जीवन स्वावलम्बन के सिद्धान्त पर ही स्थित था। स्त्री गृह के आन्तरिक जीवन की शासनकर्त्री थी। इसीलिए यहाँ तक कह दिया कि 'जायेदस्तं' (स्त्री ही घर है)। ऋग्वेद में इन्द्र के सुखद गृह का उल्लेख है जिसमे सर्वगुण सम्पन्न प्रेयसी का प्रभुत्व स्थापित था और जहाँ पर उसके माधुर्यपूर्ण शब्द गुंजायमान होते थे। इन्द्र को सम्बोधित करते हुए ऋषि कहते हैं कि–''हे इन्द्र तुमने सोमपान किया है, अब तुम अपने घर जाओ, जहाँ तुम्हारी कल्याणकारी पत्नी है जो आनन्द का भण्ड़ार है।''[1] ऋषि के इस वक्तव्य से तत्कालीन पारिवारिक सौख्य का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत हुआ है।

ऋग्वेद में सूर्या–सावित्री के विवाह के वर्णन के अवसर पर स्त्री के गृहिणीपद का सुन्दर विवेचन प्राप्त होता है। इस प्रकरण में नवविवाहिता वधू को कहा है कि ''गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो वषिनी त्वं विदथ मा वदासि।'' [2]

1. ऋग्वेद – 4/58/8
2. ऋग्वेद – 10/85/25

अर्थात ''अपने घर में प्रवेश करो, और गृहपत्नी (गृहिणी) बन कर सब पर शासन करो।'' सन्तान द्वारा तुम्हें समृद्धि प्राप्त होवे तथा इस घर में गार्हपत्य के प्रति तुम सदैव जागरुक रहो। ''संतान द्वारा तुम्हें समृद्धि प्राप्त होवे तथा इस घर में गार्हपत्य के प्रति तुम सदैव जागरुक रहो।''

इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन्गृहे गार्हपत्याय जागृहि।" [1]

गार्हपत्यादि शब्दों में स्त्री के गृहिणी पद से सम्बन्धित कर्त्तव्यों का उल्लेख है। गार्हपत्याग्नि पारिवारिक जीवन की विभिन्न प्रवृत्तियों का केन्द्र थी और गार्हपत्य शब्द में गृहिणी विषयक समस्त प्रवृत्तियों का समावेष हो जाता है।

मातृपद – मातृ शब्द पारिवारिक जीवन के लिए अमृत का भण्डार है। माता परिवार के लिए त्याग, तपस्या व प्रेम की त्रिवेणी है। माता व संतान का परस्पर प्रेम ही पारिवारिक सुख की आधारशिला है। मातृत्व का पद ही उसे पारिवारिक जीवन का केन्द्र बनाता है। उसका जीवन बच्चों के लिए समर्पित हो जाता है। ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर स्त्री के मातृत्व का सुन्दर चित्रण किया है। ऊषा के वर्णन के प्रसंग में कहा है– ''पुत्र जिस प्रकार माता के देदीप्यमान मुख की ओर आकर्षित होते हैं उसी प्रकार हम भी तुम्हारी तरफ आकर्षित होते हैं।''
एक अन्य स्थल में उल्लेख है–''जिस प्रकार आकाश में स्थित बादल क्रीड़ा कर रहे हैं उसी प्रकार महल के प्रासाद पर स्थित बच्चे क्रीड़ा करते हैं।''
एक अन्य स्थल पर विश्वदेवा की स्तुति में कहा है– ''जिस प्रकार पुत्र अपनी माता की गोद में आकर बैठ जाते हैं उसी प्रकार विश्वदेवा भी प्रेमपूर्वक यज्ञस्थली में आकर बैठ जाऐं।'' सूर्या–सावित्री के विवाह के प्रसंग में भी स्त्री के मातृपद का मधुर चित्रण किया है। पति अपनी नवविवाहित पत्नी के बारे में कहता है– ''अग्नि ने मुझे यह पत्नी, पुत्र, धन आदि प्रदान किये हैं।''

''रयिं च पुत्रांष्चादादग्नि र्मह्यमथो इमाम्।'' [2]

वर–वधू को सम्बोधित करते हुए कहा है–''यहाँ पर सांसारिक वैभवों का उपभोग करो, अपने घर में अपने पुत्रों–पौत्रों आदि के साथ खेलते हुए व आनन्द मनाते हुए जीवन यापन करो।''

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विष्वभायुर्व्यष्नुतम्। [3]

पति ने पुनः कहा है– प्रजापति हमें सन्तान प्रदान करे व आजीवन हमें एक साथ रखे। अर्यमा ने यह कल्याणकारी पत्नी प्रदान की है। ''इन्द्र से प्रार्थना करते हुए कहा है– ''हे इन्द्र इस नवविवाहित पत्नी को अच्छे पुत्र वाली तथा सौभाग्यवाली बनाओ। इसे दस पुत्र प्रदान करो।''

''इमां त्वमिन्द्रमीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु। दषास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादषं कृधि।'' [4]

वैदिक काल में पितृपक्ष प्रधान परिवार प्रथा के अनुसार पुत्र प्राप्ति के महत्व के कारण स्त्री का मातृपद महत्वपूर्ण था। वेदों में प्रयुक्त होने वाला जाया शब्द मातृपद का ही द्योतक है।

1. ऋग्वेद – 10/85/36
2. ऋग्वेद – 10/85/41
3. ऋग्वेद – 10/85/42
4. ऋग्वेद – 10/85/43

सहचरी –
गृहिणीपद और मातृपद के अतिरिक्त स्त्री का एक तीसरा सहचरी का पद था। गृहिणी तथा मातृपद के उत्तरदायित्व का निर्वहन करते हुए जीवन में नीरसता न आ जाए इसीलिए वह पति की सहचरी बनकर जीवन सौख्य का आनन्द लेती थी। प्रकृति प्रदत्त सौन्दर्य व मधुर प्रेम से अथक प्रयासों से ललित कला आदि में परिणत कर जीवन के दुःखों को विस्मृत करने में सक्षम होती थी। स्त्री के अंग प्रत्यंग से बहने वाला सौन्दर्य व मधुर तथा स्निग्ध एवं निष्छल प्रेम पति की दिन भर की परेशानियों, चिन्ताओं को भस्मसात करने में सक्षम होता था। यह साहचर्य किसी एक दिशा तक ही सीमित नहीं था अपितु यह जीवन के प्रत्येक पहलू से सम्बन्धित था।
ऋग्वेद के विवाह से सम्बन्धित मन्त्रों में कहा गया है कि वर वधू का पाणिग्रहण 'सौभगत्व' अर्थात्
सुख, समृद्धि अर्थात् आनन्दादि जीवन का उपभोग करने के लिए तथा गार्हपत्य अर्थात् गृहस्थ आश्रम के समस्त कर्त्तव्यों का साथ–साथ निवर्हन करने के लिए करता है तथा दोंनों का साहचर्य जीवन बना रहे।

गृम्णामि ते सौभगत्वाय हस्तंमयन पत्या जरदृष्टि यंथासः
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मल

आजीवन साहचर्य की आकांक्षा का सुंदर चित्रण करते हुए ऋग्वेद के मंत्र में कहा है– पतिगृह में रहते हुए हम दोनों एक साथ आजीवन सुख का उपभोग करते हुए पुत्रों व पौत्रों के साथ खेलें तथा आनन्द मनाऐं, विश्वदेवा हम दोनों को एक करे, हम दोनों के ह्रदयों को प्रीति से जोड़ दें।
वैदिक युग में पारिवारिक जीवन का आनन्द पति–पत्नी के सौमनस्य पर आधारित है और यह सौमनस्य जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रभावित करता है।
इन तीनों पदों के निवर्हन के साथ ही स्त्री को यह भी अधिकार था कि व आत्मविकास के पथ पर अग्रसर होते हुए राष्ट्र की नागरिकता के उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुए सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक विकास की धारा से जुड़कर समाज सेवा में अपना सहयोग निभाए।
अतएव स्त्री सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज तक समाज की धुरी रही है जो संतति की, समाज की जननी है वह तो स्वतः ही साक्षात् ब्रह्मा है। इसलिए वेदों में स्त्री को ब्रह्मा की संज्ञा दी गई है।
वेदों में प्राप्त स्त्री विषयक प्राप्त असंख्य नारी विषयक मंत्र है जो कि स्त्रीवाद के द्योतक हैं। वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति श्रेष्ठ थी। ऋग्वेद में नारी विषयक 422 मंत्र है। अथर्ववेद में स्त्री को घर की धुरी बताकर गृहस्थ का आधार कहा है। दशस्मृति में पत्नी को घर का मूल कहा है।
ब्राह्मण ग्रन्थों में भी स्त्री का महत्व प्रतिपादित किया है। जैमनीय उपनिषद में स्त्री को सावित्री अर्थात् गायत्री के तुल्य पवित्र और पूज्य कहा है।

'स्त्री सावित्री' ।[1]

स्त्री को अर्धांगिनी अर्थात् पुरूष का आधा भाग कहा गया है। स्त्री पुरूष की आत्मा का अंश है।

'अर्धो वा एष आत्मनः यत् पत्नी।[2]

तैत्तरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि यज्ञ आदि धार्मिक अनुष्ठान पत्नी के साथ ही किए जाते है। स्त्री सहधर्मिर्णी हैं, अतः कोई भी यज्ञ पत्नी के बिना पूरा नहीं होता है।

'अयज्ञो वा एषः योऽपत्नीकः।[3]

शतपथ ब्राह्मण का कथन हैः–

'यावत् जायां न विन्दते, असर्वो हि तावद् भवति।[4]

1. जैमनीय उपनिषद – 27.1017
2. तैत्तरीय ब्राह्मण – 3.3.35
3. तैत्तरीय ब्राह्मण – 2.1.2.6
4. शतपथ ब्राह्मण – 5.2.1.10

जब तक मनुष्य का विवाह नहीं होता है, तब तक वह अपूर्ण है। पत्नी को प्राप्त करने पर ही वह पूर्ण होता है। तैत्तरीय ब्राह्मण में कहा है स्त्री लक्ष्मी स्वरूपा है, जिस तरह लक्ष्मी की पूजा की जाती है, सम्मान किया जाता है, उसी प्रकार स्त्री का सम्मान करना चाहिए।

वेदों में स्त्रियों की शिक्षा की सुचारू व्यवस्था थी, वे शिक्षा प्राप्त करने के लिए गुरूकुल में आचार्य के समीप जाती थी। उनका बालक के समान ही उपनयन संस्कार किया जाता था। स्त्री ज्ञान की श्रेष्ठता के कारण संस्कारों को सम्पन्न कराने की अधिकारिणी होती थी।

वेदों में स्त्री को ब्रह्मा की संज्ञा दी गई –

स्त्री हि ब्रह्म बभूविथ।[1]

ऋग्वेद में इन्द्राणी का कथन है कि – मैं समाज में मूर्धन्य हूँ। मै अग्रगण्य हूँ और उद्भट वक्ता हूँ।

अहं केतुरहं मूर्धाऽहमुग्रा विवाचनी।[2]

इन्द्राणी का यह कथन संकेत करता है कि मैं बलहीन नहीं हूँ, अपितु बलयुक्त हूँ। मैं वीर पुत्रों की जन्मदात्री हूँ।

वैदिक काल में स्त्रियां काव्यकला, शस्त्रविद्या की शिक्षा के द्वारा योद्वा, सेनानी और शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाली हुई हैं।

वैदिक काल में बौद्धिक तथा सामाजिक क्षेत्र में उनका बहुत उच्च स्थान था। श्रौत सूत्र से हमें विदित होता है कि उन्हें वेदाध्ययन कराया जाता था और वे वेद मन्त्रों का उच्चारण कर सकती थी। इसका प्रमाण पाणिनि की अष्टाध्यायी है, जिससे सिद्व होता है कि स्त्रियां गुरूकुल में रहकर वेदों की विविध भाषाओं का अध्ययन किया करती थी तथा शास्त्रार्थ भी किया करती थी। पतञजलि के महाभाष्य से यह ज्ञात होता है कि स्त्रियां उस समय आचार्य भी थी और गुरूकुल में रहने वाली कन्याओं को वेद पढाती थी। पुरूषों के साथ धर्म, दर्शन, अभ्यास आदि गूढ विषयों पर स्त्रियों के शास्त्रार्थ के उदाहरण वेदों में भरे पडे है। जनक और सुलभा, याज्ञवल्वय और गार्गी, याज्ञवल्वय और मैत्रैयी तथा शंकराचार्य और विद्वाधरी के शास्त्रार्थ यह दर्शाते है कि वैदिक काल में स्त्रियां ज्ञान,शिक्षा व कला के क्षेत्र में उच्चतर स्तर पर थी।

स्त्री एवं पुरूष क्षेत्र एवं बीज के समान है।

सोम देवता ने नारी को पवित्रता दी, गन्धर्व ने मधुर वाणी और अग्नि ने सब प्रकार से पवित्र होने की शक्ति दी। अतएवं स्त्रियां सर्वत्र पवित्र होती हैं।

नारी हिन्दू समाज व्यवस्था का आधार स्तम्भ, संस्कृति की निर्मात्री, सभ्यता का स्रोत और वैवाहिक जीवन की आधारशिला है। वैदिक काल में कन्याओं को वेदाध्ययन का अधिकार था और उन्हें विविध प्रकार की शिक्षा दी जाती थी, उस समय के साहित्य में बहुत सी विदूषी स्त्रियों के नाम मिलते हैं। परदा प्रथा का प्रचलन नहीं था। युवतियां मुक्त वातावरण में जीवन व्यतीत करती थी। परिवार में पत्नी का गौरवमय स्थान था और विधवाओं को भी पुनर्विवाह का अधिकार था। वैदिक समाज में स्त्रियों के सम्मान के को अतिशय प्रमाण प्राप्त होते हैं।

वैदिक काल में स्त्रियों को ललित कलाओं की शिक्षा दी जाती थी। इसलिए उसकी नृत्य, संगीत, शिल्प, वाद्य आदि में निपुणता थी।

ऋग्वेद में उषा को एक कुशल नर्तकी के रूप में चित्रित किया है।

वैदिक काल में स्त्रियां युद्वकला में सिद्वहस्त होती थी।

1. ऋग्वेद – 10.151.2
2. ऋग्वेद – 10.151.2

यजुर्वेद में कहा गया है कि स्त्री अजेय (अषाढा), विजेता (सहमानां) सहस्त्रों प्रकार के पराक्रम करने वाली (सहस्त्रवीर्या) होती थी।

अषाढा सहमाना सहस्त्रवीर्या।[1]

ऋग्वेद में स्त्री को शत्रुरहित (असपत्ना), शत्रुनाशक (सपत्नीहनी) विजयिनी(जयन्ती), अभिभूवरी (शत्रुओं को हराने वाली) कहा गया है।

असपत्ना सपत्नीध्नी, जयन्ती–अभिभूवरी।[2]

ऋग्वेद में महिलाओं में नेतृत्व क्षमता थी, वे निर्भीक होती थी, उनमें किसी भी विषय में यह भावना नहीं होती थी कि वे स्त्री है और संकोच करें।

अग्र एति युवतिह्वयाणा।[3]

जैसे पुरूष युद्व के समय सेनापति के रूप मे सेना का नेतृत्व करते थे उसी प्रकार महिलाओं की पृथक से सेना होती थी और वे सेनापति के रूप में सेना का नेतृत्व करती थी तथा शत्रुओं का संहार कर विजय प्राप्त करती थी।

इन्द्राणी को पराक्रमी महिला सेनापति के रूप में प्रस्तुत किया है। इन्द्राणी के विषय में कहा है कि इन्द्राणी युद्व में सदा अजेय रही हैं उनको कोई युद्व में परास्त नहीं कर सका है वे युद्व में सैन्य शस्त्रों को धारण कर शत्रु सेना को तलवार से काटती हुई आगे बढती थी और युद्व में विजय प्राप्त करती थी। तैत्तरीय संहिता में इंद्राणी को सेना की देवता कहा है। इन्द्राणी की नेतृत्व क्षमता इतनी प्रखर है कि वह अपने पराक्रमी, ओजस्वी वाणी से सेना में प्राणों का संचार कर देती और सेना उसके नेतृत्व में अजेय हो जाती है।

इन्द्राणी वै सेनायै देवता। सैवास्य सेना संश्यति।[4]

वेदों में उल्लेख है कि स्त्रियों की पृथक से सेना होती थी।

वैदिक काल में स्त्रियों को आदि शक्ति के रूप में चित्रित किया जाता है। स्त्रियों को देवी तथा मातृ शक्ति का प्रतीक कहा गया है। गोपथ ब्राह्मण में स्त्री को श्री कहा है।

सविता श्रिया स्त्रियं समदधात्।[5]

यजुर्वेद में विष्णु की दो पत्नियों श्री और लक्ष्मी का उल्लेख मिलता है।

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ।[6]

संसार का ऐश्वर्य और सौन्दर्यं श्री और लक्ष्मी के रूप में जाना जाता है। इस उल्लेख से स्त्री के गौरव और महत्तव का ज्ञान होता है। तैत्तरीय और शतपथ ब्राह्मण में पत्नी को गृह की प्रतिष्ठा माना है।

श्रियै वा एतद्रूपं यत् पत्नयः।[1]
श्रिया वा एतद्रूपं यत् पत्नयः।[2]

वैदिक काल में स्त्री को विद्यायुक्त, शक्तिशालिनी, दानशीला, अन्नपूर्णा और अक्षय सुख का आगार कहा है। वेदों का अध्यापन कराने वाली स्त्रियों को आचार्य और उपाध्याया कहा है। स्त्रियों के संरक्षण की व्यवस्था थी, उनको भोजन, वस्त्र आदि के द्वारा सत्कृत किए जाने की भी परम्परा थी।

1. यजुर्वेद – 13.26
2. ऋग्वेद – 10.151.5
3. ऋग्वेद – 70.80.2
4. तैत्तरीय संहिता – 2.2.8.1
5. गोपथ ब्राह्मण – 1.34
6. यजुर्वेद – 31.22
7. शतपथ ब्राह्मण – 13.2.6.7
8. तैत्तरीय ब्राह्मण – 3.1.4.7

वेदयुग की स्त्रियां वैदिक वाङ्मय का शास्त्रबद्ध विधि से अध्ययन करती थी एवं यज्ञों में भाग लेकर मंत्रोच्चार भी करती थी। वैदिक समाज में स्त्रियों के साथ धर्म के प्रति दुराचार नहीं था। विवाह संस्कार होने के बाद वे और सम्मान के पद को प्राप्त करती थी। वेदयुग में पत्नी ही यज्ञ में सोम गीतों का गान करती थी। पति के दायीं ओर बैठकर पति के सहयोग से यज्ञ संपन्न करती थी।

वेदों में स्त्रियों के लिए कहा गया है स्त्रियों पर देवों की कृपा रहती है और देवों से उसे दिव्य गुणप्राप्त होते हैं। सोम देव उसे सुशीलता और विनय देता है, गन्धर्व उसे कण्ठ माधुर्य देते है।

स्त्रियां पर बल प्रदर्शन करना घृणित माना जाता था। स्त्री के साथ दुर्व्यवहार, हिंसा व स्त्री हत्या के प्राणदण्ड की व्यवस्था थी।

स्त्रियों को राजनीति अधिकार भी प्राप्त थे। भारतीय राजतन्त्र में पट्टमहादेवी या महिषी की वैधानिक स्थिति थी। राजा के साथ ही उसका भी महाभिषेक किया जाता था। महिषी को सम्मान रूप में धन मिलता है। स्त्रियों को ऋणों के भुगतान में, विवाह संस्कार में विशेष अधिकार प्राप्त था। वन्ध्या स्त्री, पुत्रहीन स्त्री, विधवा और रोग ग्रस्त स्त्री की रक्षा राजा करता था। स्त्रियों की सुरक्षा थी वे अपनी इच्छानुसार विचरण कर सकती थी।

स्त्री को पैतृक सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त था। स्त्री के लिये धन की भी व्यवस्था थी। पति की सम्पत्ति में पत्नी को और पिता की सम्पत्ति में पुत्री का अधिकार प्राप्त था।

मनुष्य स्त्री की रक्षा से ही अपनी सन्तान, आचरण, कुल, धर्म और समाज की रक्षा कर सकता है, इसलिए उसे स्त्री की रक्षा करनी चाहिए। मनु ने कहा है जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। जहाँ स्त्रियों का सम्मान नहीं होता है, अपमान होता है, वहाँ सब प्रकार की विपत्ति आती है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः।।

अतः परिवार समाज एवं राष्ट्र की उन्नति के लिए स्त्रियों का सम्मान जरूरी है। तथा अग्नि उसे तेजस्विता, ऐश्वर्य और संतति देते है।[1]

स्त्रियों को आध्यात्मिक शिक्षा के अतिरिक्त काव्य कला, शस्त्र विद्या, ललित कलाओं, संगीत, नृत्य, अभिनय आदि कलाओं की शिक्षा लेकर उनमें प्रवीणता प्राप्त करती थी। काव्यकला के आधार पर वे मन्त्रदृष्टा हुई हैं। शस्त्र विद्या की शिक्षा से योद्वा और सेनानी और शत्रु विजयिनी हुई है। नृत्य गान के द्वारा नृत्य व गायन में दक्ष हुई हैं। सूर्या, सावित्री, इन्द्राणी, मातृनामा, घोषा काक्षीवती, सिकता निवावरी, यमी, वैवस्वती, दक्षिणा, पाजापत्या, अदिति, वाक् आम्भ्णी, अपाला आत्रेयी, ऊर्वशी, पौलोमी, कामायनी, रोमशा, ब्रह्मवादिनी।

वैदिक काल मे स्त्रियों के दो प्रकार थे – 1. सद्योद्वाहः । 2. ब्रह्मवादिनी।

द्विविधाः स्त्रियो ब्रह्मावादिन्यः सद्योद्वाहाश्च।
तत्र ब्रह्मावादिनाम् अग्नीन्धनं वेदाध्ययनं च।[1]

ऋग्वेद में जैसे पुरूष ऋषि मंत्र के साक्षात् दृष्टा थे वैसे ही स्त्रियां भी मंत्रदृष्टा थी। इन स्त्री मंत्र दृष्टा ऋषियों ने मंत्रों का साक्षात्कार करके वैदिक साहित्य के संवर्ध्द्धन में योगदान दिया। ऋग्वेद मे सर्वप्रथम ऋषिकाओं में रोमशा का उल्लेख मिलता है। रोमशा मंत्र दृष्टा स्त्री ऋषिकाओं मे ''उपोष मे परामर्श में दभ्राणि मन्यथाः। सर्वाहसस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका।'' इस मंत्र का दर्शन किया और इस मंत्र के द्वारा पुरूषों के बीच मे प्रखर बौद्धिक क्षमतावाली स्त्री की प्रतिष्ठा सीापित की। लोपामुद्रा (महर्षि अगत्स्य ऋषि की पत्नी) ने प्रथम मण्डल का 179 सूक्त के दो मंत्रो का साक्षात्कार किया

पूर्वरिहं शरदः शुश्रमाणां दोषा वस्तोरूषसो जरयन्तीः।
मिनाती श्रियं जरिया तनूनामप्यूनु पत्नी वृषणो जगम्यूः।।

चतुर्थ मण्डल में देवमाता अदिती का उल्लेख है। इन्होने 18 वें सूक्त सातवें मंत्र का साक्षात्कार किया।''किमु ष्विदसौ निविदो भवन्ते द्रस्भावद्यं दिधिषन्त आधः। ममैतान् पुत्रों मृहता बधेनं वृत्रं अन्धवा असृजद् विसिन्धून।''

पाँचवे मण्डल में सम्पूर्ण 28 वें सूक्त का साक्षात्कार विश्वास आत्रेयी ने किया। इसमें छः मन्त्र है।

ब्रह्मचर्य आश्रम के बाद जो स्त्रियां विवाह कर गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हो जाती थी वे सद्योद्वाहा कहलाई। जो स्त्रियां जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर तपस्या में जीवन निर्वाह करती थी। वे ब्रह्मवादिनी कहलाती थी।

1. ऋग्वेद – 10.85.41

वैदिक काल में महिला जितनी स्वतन्त्र और मुक्त थी उतनी परवर्ती काल के किसी युग में नही थी। वे अपना मनोबल आत्मविकास और उत्थान कर सकती थी। इस समय में महिलाऐं बिना अवगुण्ठन के विद्वदगोष्ठियों और दार्शनिक वाद– विदानों में सम्मिल होती थी तथा परिचर्चा में भाग लेती थी। ऋचाओं का गान करती थी। स्त्रियां शासन व्यवस्था और राज्य के प्रबन्ध में दक्ष होती थी।